रंगमंच कला

1. भारत के नृत्य
- शास्त्रीय नृत्य
  - भरतनाट्यम नृत्य
  - कथकली नृत्य
  - कथक नृत्य
  - मणिपुरी नृत्य
  - ओडिसी नृत्य
  - कुचिपुड़ी नृत्य
  - सत्रिया नृत्य
  - मोहिनीअट्टम नृत्य

2. भारतीय संगीत
- हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत
- कर्नाटक शास्त्रीय संगीत
- क्षेत्रीय संगीत
- संगीत उपकरण

3. भारत के रंगमंच कला
- रंगमंच कला

4. भारत के कठपुतली कला
- कठपुतली कला

पारंपरिक नाटय मंच

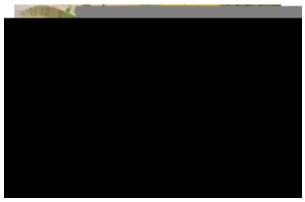

भारतीय समाज में पारंपरिकता का विशेष स्थान है । परंपरा एक सहज प्रवाह है । निश्चय ही, पारंपरिक कलाएं समाज की जिजीविषा, संकल्पना, भावना, संवेदना तथा ऐतिहासिकता को अभिव्यक्त करती हैं । नाटक अपने आप में संपूर्ण विधा है, जिसमें अभिनय, संवाद, कविता, संगीत इत्यादि एक साथ उपस्थित रहते हैं । परंपरा में नाटक एक कला की तरह है ।

लोकजीवन में गेयता एक प्रमुख तत्व है । सभी पारंपरिक भारतीय नाट्यशैलियों में गायन की प्रमुखता है । यह जातीय संवेदना का प्रकटीकरण है ।

पारंपरिक रूप से लोक की भाषा में सृजनात्मकता सूत्रबद्ध रूप में या शास्त्रीय तरीके से नहीं, अपितु बिखरे, छितराये, दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप होती है । जीवन के सघन अनुभवों से जो सहज लय उत्पन्न होती है, वही अंतत: लोकनाटक बन जाती है । उसमें दु:ख, सुख, हताशा, घृणा, प्रेम आदि मानवीय प्रसंग आते हैं ।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में तीज-त्यौहार, मेले, समारोह, अनुष्ठान, पूजा-अर्चना आदि होते रहते हैं, उन अवसरों पर ये प्रस्तुतियां भी होती हैं । इसलिए इनमें जनता का सामाजिक दृष्टिकोण प्रकट होता है । इस सामाजिकता में गहरी वैयक्तिकता भी होती है ।

पारंपरिक नाट्य में लोकरुचि के अलावा क्लासिक तत्व भी उपस्थित होते हैं, लेकिन क्लासिक अंदाज़ अने क्षेत्रीय, स्थानीय एवं लोरूप में होते हैं । संस्कृत रंगमंच के निष्क्रिय होने पर उससे जुड़े लोग प्रदेशों में जांकर वहां के रंगकर्म से जुड़े होंगे । इस प्रकार लेन-देन की प्रक्रिया अनेक रूपों में संभव हुई । वस्तुत: इसके कई स्तर थे- लिखित, मौखिक, शास्त्रीय-तात्कालिक, राष्ट्रीय- स्थानीय ।

विभिन्न पारंपरिक नाट्यों में प्रवेश-नृत्य, कथन नृत्य और दृश्य नृत्य की प्रस्तुति किसी न किसी रूप में होती है । दृश्य नृत्य का श्रेष्ठ उदाहरण बिदापत नाच नामक नाट्य शैली में भी मिलता है । इसकी महत्ता किसी प्रकार के कलात्मक सौंदर्य में नहीं, अपितु नाट्य में है तथा नृत्य के दृश्य पक्ष की स्थापना करने में है । कथन नृत्य पारंपरिक नाट्य का आधार है । इसका अच्छा उपयोग गुजरात की भवाई में देखने को मिलता है । इसमें पदक्षेप की क्षिप्र अथवा मंथर गति से कथन की पुष्टि होती है । प्रवेश नृत्य का उदाहरण है- कश्मीर का भांडजश्न नृत्य । प्रत्येक पात्र की गति और चलने की भंगिमा उसके चरित्र को व्यक्त करती है । कुटियाट्टम तथा अंकिआनाट में प्रेवश नृत्य जटिल तथा कलात्मक होते हैं । दोनों ही लोकनाट्य शैलियों में गति व भंगिमा से स्वभावगत वैशिष्ट्य को दर्शक तक पहुँचाते हैं ।

पारंपरिक नाट्य में परंपरागत निर्देशों तथा तुरंत उत्पन्न मति को मिश्रण होता है । परंपरागत निर्देशों का पालन गंभीर प्रसंगों पर होता है, लेकिन समसामयिक प्रसंगों में अभिनेता या अभिनेत्री अपनी आवश्यकता से भी संवाद की सृष्टि कर लेता है । भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' में ये दोनों स्तर पर कार्य करते हैं ।

.

पारंपरिक नाट्यों में कुछ विशिष्ट प्रदर्शन रुढियां होती हैं । ये रंगमंच के रूप, आकार तथा अन्य परिस्थितियों से जन्म लेती हैं । पात्रों के प्रवेश तथा प्रस्थान का कोई औपचारिक रूप नहीं होता । नाटकीय स्थिति के अनुसार बिना किसी भूमिका के पात्र रंगमंच पर आकर अपनी प्रस्तुति करते हैं । किसी प्रसंग और खास

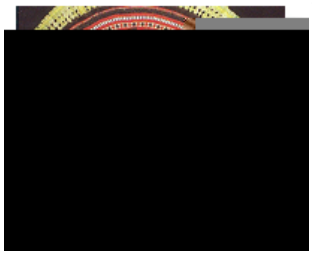

दृश्य के पात्रों के एक साथ रंगमंच को छोड़कर चले जाने अथवा पीछे हटकर बैठ जाने से नाटक में दृश्यांतर बता दिया जाता है ।

पारंपरिक नाट्यों में सुसंबद्ध दृश्यों के बदले नाटकीय व्यापार की पूर्ण इकाइयां होती हैं । इसका गठन बहुत शिथिल होता है, इसलिए नए-नए प्रसंग जोड़ते हुए कथा-विस्तार के लिए काफी संभावना रहती है । अभिनेताओं तथा दर्शकों के बीच संप्रेषण सीधा व सरल होता है ।

नाट्य परंपरा पर औद्योगिक सभ्यता, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण का असर भी पड़ा है । इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक पड़ताल करनी चाहिए । कानपुर शहर नौटंकी का प्रमुख केन्द्र बन गया था । नर्तकों, अभिनेताओं, गायकों इत्यादि ने इस स्थिति का उपयोग कर स्थानीय रूप को प्रमुखता से उभारा ।

पारंपरिक नाट्य की विशिष्टता उसकी सहजता है । आखिर क्या बात है कि शताब्दियों से पारंपरिक नाट्य जीवित रहने तथा सादगी बनाए रखने में समर्थ सिद्ध हुए हैं ? सच तो यह है कि दर्शक जितना शीघ्र, सीधा, वास्तविक तथा लयपूर्ण संबंध पारंपरिक नाट्य से स्थापित कर पाता है, उतना अन्य कला रूपों से नहीं । दर्शकों की ताली, वाह-वाही उनके संबंध को दर्शाती है ।

वस्तुत: पारंपरिक नाट्यशैलियों का विकास ऐसी स्थानीय या क्षेत्रीय विशिष्टता के आधार पर हुआ, जो सामाजिक, आर्थिक स्तरबद्धता की सीमाओं से बँधी हुई नहीं थीं । पारंपरिक कलाओं ने शास्त्रीय कलाओं को प्रभावित किया, साथ ही, शास्त्रीय कलाओं ने पारंपरिक कलाओं को प्रभावित किया । यह एक सांस्कृतिक अन्तर्यात्रा है ।

पारंपरिक लोकनाट्यों में स्थितियों में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए पात्र मंच पर अपनी जगह बदलते रहते हैं । इससे एकरसता भी दूर होती है । अभिनय के दौरान अभिनेता व अभिनेत्री प्राय: उच्च स्वर में संवाद करते हैं । शायद इसकी वजह दर्शकों तक अपनी आवाज़ सुविधाजनक तरीके से पहुँचानी है । अभिनेता अपने माध्यम से भी कुछ न कुछ जोड़ते चलते हैं । जो आशु शैली में जोड़ा जाता है, वह दर्शकों को भाव-विभोर कर देता है, साथ ही, दर्शकों से सीधा संबंध भी बनाने में सक्षम होता है । बीच-बीच में विदूषक भी यही कार्य करते हैं । वे हल्के-फुल्के ढंग से बड़ी बात कह जाते हैं । इसी बहाने वे व्यवस्था, समाज, सत्ता, परिस्थितियों पर गहरी टिप्पणी करते हैं । विदूषक को विभिन्न पारंपरिक नाट्यों में अलग-अलग नाम से पुकारते हैं । संवाद की शैली कुछ इस तरह होती है कि राजा ने कोई बात कही, जो जनता के हित में नही है तो विदूषक अचानक उपस्थित होकर जनता का पक्ष ले लेगा और ऐसी बात कहेगा, जिससे हँसी तो छूटे ही, राजा के जन-विरोधी होने की कलई भी खुले ।

विविध पारंपरिक नाट्य शैलियां

भांड-पाथर, कश्मीर का पारंपरिक नाट्य है । यह नृत्य, संगीत और नाट्यकला का अनूठा संगम है । व्यंगय मज़ाक और नकल उतारने हेतु इसमें हँसने और हँसाने को प्राथमिकता दी गयी है । संगीत के लिए सुरनाई, नगाड़ा और ढोल इत्यादि का प्रयोग किया जाता है । मूलत: भांड कृषक वर्ग के हैं, इसलिए इस नाट्यकला पर कृषि-संवेदना का गहरा प्रभाव है ।

स्वांग, मूलत: स्वांग में पहले संगीत का विधान रहता था, परन्तु बाद में गद्य का भी समावेश हुआ । इसमें भावों की कोमलता, रससिद्धि के साथ-साथ चरित्र का विकास भी होता है । स्वांग को दो शैलियां (रोहतक तथा हाथरस) उल्लेखनीय हैं । रोहतक शैली में हरियाणवी (बांगरू) भाषा तथा हाथरसी शैली में ब्रजभाषा की प्रधानता है ।

नौटंकी प्राय: उत्तर प्रदेश से सम्बंधित है । इसकी कानपुर, लखनऊ तथा हाथरस शैलियां प्रसिद्ध हैं । इसमें प्राय: दोहा, चौबोला, छप्पय, बहर-ए-तबील छंदों का प्रयोग किया जाता है । पहले नौटंकी में पुरुष ही स्त्री पात्रों का अभिनय करते थे, अब स्त्रियां भी काफी मात्रा में इसमें भाग लेने लगी हैं । कानपुर की गुलाब बाई ने इसमें जान डाल दी । उन्होंने नौटंकी के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किए ।

रासलीला में कृष्ण की लीलाओं का अभिनय होता है । ऐसे मान्यता है कि रासलीला सम्बंधी नाटक सर्वप्रथम नंददास द्वारा रचित हुए इसमें गद्य-संवाद, गेय पद और लीला दृश्य का उचित योग है । इसमें तत्सम के बदले तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग होता है ।

भवाई, गुजरात और राजस्थान की पारंपरिक नाट्यशैली है । इसका विशेष स्थान कच्छ-काठियावाड़ माना जाता है । इसमें भुंगल, तबला, ढोलक, बांसुरी, पखावज, रबाब, सारंगी, मंजीरा इत्यादि वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है । भवाई में भक्ति और रूमान का उद्भुत मेल देखने को मिलता है ।

जात्रा, देवपूजा के निमित्त आयोजित मेलों, अनुष्ठानों आदि से जुड़े नाट्यगीतों को 'जात्रा' कहा जाता है । यह मूल रूप से बंगाल में पला-बढ़ा है । वस्तुत: श्री चैतन्य के प्रभाव से कृष्ण-जात्रा बहुत लोकप्रिय हो गयी थी । बाद में इसमें लौकिक प्रेम प्रसंग भी जोड़े गए । इसका प्रारंभिक रूप संगीतपरक रहा है । इसमसेंस कहीं-कहीं संवादों को भी संयोजित किया गया । दृश्य, स्थान आदि के बदलाव के बारे में पात्र स्वयं बता देते हैं ।

माच, मध्य प्रदेश का पारंपरिक नाट्य है । 'माच' शब्द मंच और खेल दोनों अर्थों में इस्तेमाल किया जाता है । माच में पद्य की अधिकता होती है । इसके संवादों को बोल तथा छंद योजना को वणग कहते हैं । इसकी धुनों को रंगत के नाम से जाना जाता है ।

भाओना, असम के अंकिआ नाट की प्रस्तुति है । इस शैली में असम, बंगाल, उड़ीसा, वृंदावन-मथुरा आदि की सांस्कृतिक झलक मिलती है । इसका सूत्रधार दो भाषाओं में अपने को प्रकट करता है- पहले संस्कृत, बाद में ब्रजबोली अथवा असमिया में ।

तमाशा महाराष्ट्र की पारंपरिक नाट्यशैली है । इसके पूर्ववर्ती रूप गोंधल, जागरण व कीर्तन रहे होंगे । तमाशा लोकनाट्य में नृत्य क्रिया की प्रमुख प्रतिपादिका स्त्री कलाकार होती है । वह 'मुरकी' के नाम से जानी जाती है । नृत्य के माध्यम से शास्त्रीय संगीत, वैदुयतिक गति के पदचाप, विविध मुद्राओं द्वारा सभी भावनाएं दर्शाई जा सकती हैं ।

दशावतार कोंकण व गोवा क्षेत्र का अत्यंत विकसित नाट्य रूप है । प्रस्तोता पालन व सृजन के देवता-भगवान विष्णु के दस अवतारों को प्रस्तुत करते हैं । दस अवतार हैं- मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण (या बलराम), बुद्ध व कल्कि । शैलीगत साजसिंगार से परे दशावतार का प्रदर्शन करने वाले लकड़ी व पेपरमेशे का मुखौटा पहनते हैं ।

केरल का लोकनाट्य **कृष्णाट्टम** 17वीं शताब्दी के मध्य कालीकट के महाराज मनवेदा के शासन के अधीन अस्तित्व में आया । कृष्णाट्टम आठ नाटकों का वृत्त है, जो क्रमागत रुप में आठ दिन प्रस्तुत किया जाता है । नाटक हैं-अवतारम्, कालियमर्दन, रासक्रीड़ा, कंसवधाम् स्वयंवरम्, वाणयुद्धम्, विविधविधम्, स्वर्गारोहण । वृत्तांत भगवान कृष्ण को थीम पर आधारित हैं- श्रीकृष्ण जन्म, बाल्यकाल तथा बुराई पर अच्छाई के विजय को चित्रित करते विविध कार्य ।

केरल के पारंपरिक लोकनाट्य **मुडियेट्टट** का उत्सव वृश्चिकम् (नवम्बर-दिसम्बर) मास में मनाया जाता है । यह प्राय: देवी के सम्मान में केरल के केवल काली मंदिरों में प्रदर्शित किया जाता है । यह असुर दारिका पर देवी भद्रकाली की विजय को चित्रित करता है । गहरे साज-सिंगार के आधार पर सात चरित्रों का निरूपण होता है- शिव, नारद, दारिका, दानवेन्द्र, भद्रकाली, कूलि, कोइम्बिदार (नंदिकेश्वर) ।

कुटियाट्टम, जो कि केरल का सर्वाधिक प्राचीन पारंपरिक लोक नाट्य रुप है, संस्कृत नाटकों की परंपरा पर आधारित है । इसमें ये चरित्र होते हैं- चाक्यार या अभिनेता, नांब्यार या वादक तथा नांग्यार या स्त्रीपात्र । सूत्रधार और विदूषक भभ कुटियाट्टम् के विशेष पात्र हैं । सिर्फ विदूषक को ही बोलने की स्वंतत्रता है । हस्तमुद्राओं तथा आंखों के संचलन पर बल देने के कारण यह नृत्य एवं नाट्य रूप विशिष्ट बन जाता है ।

कर्नाटक का पारंपरिक नाट्य रूप **यक्षगान** मिथकीय कथाओं तथा पुराणों पर आधारित है । मुख्य लोकप्रिय कथानक, जो महाभारत से लिये गये हैं, इस प्रकार हैं : द्रौपदी स्वयंवर, सुभद्रा विवाह, अभिमन्युवध, कर्ण-अर्जुन युद्ध तथा रामायण के कथानक हैं : वलकुश युद्ध, बालिसुग्रीव युद्ध और पंचवटी ।

तमिलनाडु की पारंपरिक लोकनाट्य कलाओं में तेरुक्कुत्तु अत्यंत जनप्रिय माना जाता है । इसका सामान्य शाब्दिक अर्थ है- सड़क पर किया जाने वाला नाट्य । यह मुख्यत: मारियम्मन और द्रोपदी अम्मा के वार्षिक मंदिर उत्सव के समय प्रस्तुत किया जाता है । इस प्रकार, तेरुक्कुत्तु के माध्यम से संतान की प्राप्ति और अच्छी फसल के लिए दोनों देवियों की आराधना की जाती है । तेरुक्कुत्तु के विस्तृत विषय-वस्तु के रुप में मूलत: द्रौपदी के जीवन-चरित्र से सम्बंधित आठ नाटकों का यह चक्र होता है । काट्टियकारन सूत्रधार की भूमिका निभाते हुए नाटक का परिचय देता है तथा अपने मसखरेपन से श्रोताओं का मनोरंजन करता है ।

प्रकाशनाधिकार © सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
15 ए, सैक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार
दूरभाष नं0 (011) 25088638, 25309300, फैक्स 91-11-25088637, ई-मेल dir.ccrt@nic.in